



भारतीय महिला आंदोलन: उद्भव, विकास और वैचारिक परिवर्तन

डॉ. निशा

राजनीति विज्ञान विभा दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय महिला आंदोलन आधुनिक भारत के सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में से एक है, जिसने समय-समय पर महिलाओं की स्थिति, अधिकारों और समानता से जुड़े प्रश्नों को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। इसका विकास एक रैखिक प्रक्रिया न होकर विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलनों से प्रारंभ होकर यह आंदोलन स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक अधिकारों, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, श्रम, हिंसा, प्रतिनिधित्व, जाति, धर्म और पहचान जैसे विविध मुद्दों तक विस्तृत हुआ। विशेष रूप से 1970 के दशक के बाद स्वायत्त महिला समूहों, दलित नारीवादी हस्तक्षेपों तथा जेंडर और पहचान-आधारित विमर्शों ने भारतीय महिला आंदोलन को नए वैचारिक आयाम प्रदान किए। इसके साथ ही धार्मिक पहचान, सांस्कृतिक अधिकार और नागरिकता से जुड़े प्रश्नों ने भी महिला आंदोलन के स्वरूप और दिशा को प्रभावित किया। यह शोध-पत्र भारतीय महिला आंदोलन के ऐतिहासिक विकास, वैचारिक प्रवृत्तियों तथा बदलते सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि समय के साथ आंदोलन की प्रकृति, नेतृत्व, एजेंडा और रणनीतियों में किस प्रकार परिवर्तन आया तथा इन परिवर्तनों ने भारतीय महिला आंदोलन की दिशा को किस प्रकार प्रभावित किया। साथ ही, यह अध्ययन इस प्रश्न का भी परीक्षण करता है कि मुख्यधारा के महिला आंदोलन ने जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और अन्य सामाजिक पहचानों से जुड़े महिलाओं के विविध अनुभवों को किस सीमा तक समाहित किया है। यह शोध द्वितीयक स्रोतों पुस्तकों, शोध-पत्रों, सरकारी दस्तावेजों तथा संबंधित साहित्य के विश्लेषण पर आधारित है और भारतीय महिला आंदोलन की उपलब्धियों, अंतर्विरोधों तथा समकालीन चुनौतियों को राजनीतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: भारतीय महिला आंदोलन, स्त्रीवाद, सामाजिक आंदोलन, लैंगिक समानता, दलित नारीवाद, पहचान की राजनीति, सामाजिक न्याय।

भारतीय महिला आंदोलन का इतिहास केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शुरू नहीं होता, बल्कि इसकी जड़ें उन्नीसवीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों में मिलती हैं। जहां समाज सुधार आंदोलन के साथ-साथ स्त्रियों की स्थितियों में बदलाव लाने के लिए भी विभिन्न तरह के आंदोलन चलाए गए जैसे बाल-विवाह, बहुपत्नी प्रथा, प्रर्दाप्रथा व सती प्रथा के विरोध अभियान की शुरुआत की गई विधवा पुनःविवाह पर बल दिया गया ताकि महिलाओं व लड़कियों की शिक्षा के महत्व को समझा गया। जहाँ पश्चिमी देशों में महिलाओं को सार्वभौमिक मताधिकार प्राप्त करने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा, वहीं भारत में स्वतंत्रता और संविधान के लागू होने के साथ महिलाओं को पुरुषों के समान सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्राप्त हुआ। फिर भी भारतीय महिलाएं आज भी कई तरह की समस्याओं



व असमनताओं से जूझ रही है, स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दो दशकों बाद, 1960 के दशक के उत्तरार्ध और 1970 के दशक में गुजरात तथा बिहार में महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर व्यापक जनआंदोलन उभरे। इन सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों ने महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा दिया और महिला आंदोलन के एक नए चरण के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार कीं। इसी दौर में महिलाओं ने केवल सामाजिक कल्याण से जुड़े प्रश्नों तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि राज्य की नीतियों, विकास, हिंसा, श्रम तथा लैंगिक न्याय जैसे मुद्दों को भी आंदोलन के केंद्र में लाना शुरू किया। तीसरी लहर 1970 के दशक के उत्तरार्ध में महिला आंदोलन का एक नया चरण उभरकर सामने आया, जिसमें नारीवादी कार्यकर्ताओं ने राजनीतिक दलों से स्वतंत्र 'स्वायत्त महिला समूहों' के गठन पर विशेष बल दिया। (रॉय, 2011, पे. 414-415) 1980 के दशक के शुरुआत में वामपंथी दलों की महिलाओं द्वारा 'स्वायत्त समूहों' की आलोचना शुरू हो गई कि नारीवादी राजनीति कैसे बेहतर तरीके से संचालित हो सकती है जबकि ये स्वायत्त समूह शहरी हैं तथा मध्यम वर्ग से संबंधित हैं तथा यह भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते। (मेनन, 2006, पे. 18-19) 1980 के मध्य दशक में दलित नारीवादी आवाज़ें सुनायी पड़ती हैं जो जाति पहचान पर ध्यान खिंचती हैं जिस पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया और सिस्टरहुड (बहनापा) का नारा संकिर्णता के दायरे में देखा जाने लगा, इसी दौरान बहुत से दलित महिला संगठनों का उदय हुआ जिन्होंने महिला आंदोलन के ब्राह्मणवाद तथा दलित राजनीति पितृसत्तात्मक आचरण दोनों पर सवाल उठाए। दलित महिलाओं की पहचान पर जोर देने वाली बहस ने नारीवादी सक्रियता और लिंगभेद को फिर से परिभाषित करने के महत्व को रेखांकित कर दिया ताकि उत्पीड़न की कई परतों को सामने लाया जा सके तथा। इसके परिणामस्वरूप, महिला आंदोलन के भीतर विविधता, पहचान और इंटरसेक्शनैलिटी पर गंभीर बहस प्रारंभ हुई। 1990 के दशक के बाद और विशेष रूप से 2000 के दशक में जेंडर एवं यौनिकता से जुड़े प्रश्न अधिक प्रमुखता से महिला आंदोलन के एजेंडे में शामिल हुए। इस दौर में यौनिक विविधता के सम्मान तथा एलजीबीटीक्यू समुदाय के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने की मांगों को भी व्यापक समर्थन मिलने लगा। (रॉय, 2011, पे. 414-415) दूसरी ओर, 1980 और 1990 के दशक में महिला आंदोलन धार्मिक पहचान और सामुदायिक अधिकारों के प्रश्नों से भी जुड़ने लगा। इससे महिला आंदोलन के भीतर नई वैचारिक जटिलताएँ उत्पन्न हुईं। महिला अधिकारों, सामुदायिक अधिकारों तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण के बीच संबंधों पर व्यापक बहस प्रारंभ हुई। परिणामस्वरूप, महिला विमर्श का दायरा केवल सामाजिक न्याय तक सीमित न रहकर धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पहचान, नागरिकता और अधिकारों जैसे प्रश्नों तक विस्तृत हो गया। (वहीं) भारतीय महिला आंदोलन की शुरुआत अपेक्षाकृत सीमित, किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार संबंधी मुद्दों से हुई थी। समय के साथ इसमें जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र, जेंडर, यौनिकता तथा पहचान से जुड़े अनेक प्रश्न शामिल होते गए। इस परिवर्तन ने महिला आंदोलन को अधिक बहुआयामी और जटिल बना दिया। इसी प्रकार, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि जिस महिला आंदोलन को प्रायः 'मुख्यधारा का महिला आंदोलन' कहा जाता है, क्या वह जमीनी स्तर पर स्थानीय महिलाओं के अनुभवों और समस्याओं को पर्याप्त रूप से अपने साथ जोड़ सका? क्या स्त्रीवादी आंदोलनों ने पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती देने में सफलता प्राप्त की है, अंततः, क्या 'स्त्रीवाद' और 'महिला आंदोलन' एक ही अवधारणा हैं, या दोनों के उद्देश्य, स्वरूप और कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण अंतर है?



भारतीय महिला आंदोलन का पहला चरण 1850-1947

भारत में महिला आंदोलन 19वीं सदी के आरंभ में सामाजिक सुधार आंदोलन के रूप में उभरा। यह वह समय था जब महिलाओं के अधिकार तथा उनसे संबंधित सामाजिक बुराईयां जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा व देवदासी प्रथा, अशिक्षा इत्यादि बड़ी समस्या बन गई थी। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए शुरुआती दौर में पुरुषों ने नेतृत्व में प्रयास किए तथा विभिन्न संगठन या समाज का भी गठन किया जैसे आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन इत्यादि। (परमाल, 2019, पे. 90-91) इसी चरण की दूसरी 20वीं शताब्दी तक आते-आते महिलाओं के अधिकारों के संबंध में महिला आंदोलन के अंदर गंभीर बहस आरंभ हो गयी। जहां एक तरफ विभिन्न राष्ट्रवादी और समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं की स्थिति में रूपांतकारी परिवर्तन आ रहा था वहीं दूसरी तरफ महिला संगठनों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही थी जैसे 1917 में भारतीय महिला संघ, 1925 में भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद और 1927 में आखिल भारतीय महिला सम्मेलन। (वहीं) इसी बीच देश सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संघ, लेडीज पिकेटिंग बोर्ड, स्त्री स्वराज संघ और स्वयं सेविका संघ आदि भी बने, जो महिलाओं की लामबंदी, जुलूस व प्रभात फेरी निकालने, धरने आदि आयोजिक करने का कार्य करते थे। साथ ही खादी का प्रचार-प्रसार, चरखा चलाने का प्रशिक्षण और खादी बेचने आदि का काम भी किया करते थे। (सिंह, 2001, पे. 163) बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में महिलाओं के हितों की रक्षा एवं उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण कानून बनाए गए। महिला संगठनों और समाज सुधारकों के प्रयासों से 1929 में राष्ट्रीय नेताओं के सहयोग से शारदा अधिनियम (बाल विवाह निषेध/नियंत्रण अधिनियम) पारित किया गया, जिसने बाल विवाह पर नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस कानून को पारित कराने के लिए महिला संगठनों ने जनमत निर्माण और सामाजिक जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके पश्चात् 1930 के दशक में हिन्दू महिलाओं के विवाह एवं संपत्ति संबंधी अधिकारों को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से हिन्दू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम, 1937 सहित अन्य विधायी सुधार किए गए। (परमाल, 2019, पे. 94)

इसी काल में महात्मा गांधी ने महिलाओं की सार्वजनिक जीवन में भागीदारी को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बनाया। उनके नेतृत्व में महिलाओं को एक नई आत्मछवि और आत्मसम्मान प्राप्त हुआ, जिससे वे सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय रूप से सहभागी बनीं। 1920 और 1930 के दशकों में स्वतंत्रता आंदोलनों में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। इससे सार्वजनिक क्षेत्र, जिसे लंबे समय तक पुरुष-प्रधान माना जाता था, में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ी और घरेलू तथा सार्वजनिक क्षेत्र के पारंपरिक विभाजन पर पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। हालाँकि, कुछ नारीवादी विद्वानों का तर्क है कि राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी मुख्यतः राष्ट्रवादी उद्देश्यों की पूर्ति के संदर्भ में संगठित की गई। सामाजिक सुधार आंदोलनों की तुलना में राष्ट्रीय आंदोलन ने परिवार के भीतर विद्यमान लैंगिक सत्ता-संबंधों को व्यापक रूप से चुनौती नहीं दी। परिणामस्वरूप, महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी को कई बार उनकी पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं के विस्तार के रूप में देखा गया, न कि एक स्वतंत्र राजनीतिक एजेंसी के रूप में। इस



दृष्टिकोण के अनुसार, आंदोलन में अपनाई गई रणनीतियाँ महिलाओं के दीर्घकालिक राजनीतिक सशक्तिकरण और उनके स्वतंत्र नेतृत्व के विकास के लिए पर्याप्त नहीं थीं। (सिंह, 2001, पे. 174) इसके बावजूद महिलाओं के हितों की रक्षा और उनकी सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण कानून एवं अधिनियम बनाए गए। इसी के साथ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों, विशेषकर मताधिकार, का प्रश्न भी प्रमुखता से उभरने लगा। एनी बेसेंट के होमरूल आंदोलन तथा महिला अधिकारों के समर्थन ने भारतीय महिलाओं में राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी क्रम में 1917 में सरोजिनी नायडू ने महिलाओं को नागरिक के रूप में समान दर्जा तथा मताधिकार प्रदान करने की औपचारिक माँग रखी। (एजाज, 2001, पे. 341) सबसे पहले मद्रास में महिलाओं को मताधिकार मिला। 1926 में वहाँ महिलाओं को विधानसभा में भी प्रवेश मिला। डॉ. एस. मृत्युलक्ष्मी पहली महिला विधायक बनीं। (रॉय और शर्मा, 2001, पे. 357) कांग्रेस ने 1931 के कराची अधिवेशन में मूल अधिकारों का घोषणापत्र पारित किया गया जिसके अंतर्गत पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को समान मताधिकार की माँग को अधिक मजबूती मिली। भारत के नए संविधान की संभावना को देखते हुए नागरिकता में समानता सुनिश्चित करने के लिए एक समान नागरिक संहिता की माँग की गई ताकि सभी समूहों की महिलाओं को एक साथ लाया जा सके। (वर्ही, पे. 341)

इस तरह हम देखते हैं कि 19वीं सदी में महिला आंदोलन की लहर ने जहाँ विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा व बाल विवाह पर रोक, स्त्री शिक्षा आदि मुद्दों को दिखते हैं वहीं आंदोलन की 20वीं सदी में स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी और महिलाओं ने अनेक स्तरों पर बढ़-चढ़ कर भाग लिया तथा कई राष्ट्रीय स्तर के महिला संगठन भी बनाए जैसे 'ऑल इंडिया विमेंस कांग्रेस', 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडिया विमिन' और 'विमेंस इंडिया एसोसिएशन'। इन महिला संगठनों ने स्त्री शिक्षा के साथ-साथ मताधिकार, पर्दा प्रथा, बाल विवाह तथा महिलाओं के व्यक्तिगत एवं कानूनी अधिकारों से संबंधित मुद्दों को भी प्रमुखता से उठाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1947 के बाद भारतीय महिला आंदोलन ने एक नए चरण में प्रवेश किया, जिसमें संवैधानिक अधिकारों, कानूनी समानता, सामाजिक न्याय तथा विकास से जुड़े प्रश्न आंदोलन के केंद्र में आने लगे।

भारतीय महिला आंदोलन: 1947 से वर्तमान समय तक

महिला आंदोलन का ठहराव या निष्क्रियता का दौर: 1947-1970

स्वतंत्रता प्राप्ति और ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद भारतीय महिला आंदोलन की दिशा और स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। औपनिवेशिक शासन के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन ने विभिन्न महिला संगठनों और समूहों को एक साझा राजनीतिक उद्देश्य के अंतर्गत एकजुट रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह साझा लक्ष्य समाप्त हो गया, जिसके परिणामस्वरूप महिला आंदोलन की एकता और सक्रियता में कुछ हद तक कमी आई। साथ ही, महिलाओं को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्राप्त हो चुका था तथा भारतीय संविधान ने लिंग के आधार पर भेदभाव के निषेध और समानता के अधिकार की संवैधानिक गारंटी प्रदान की। इन कारणों से स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में महिला आंदोलन अपेक्षाकृत मंद पड़ा और



इस अवधि में व्यापक स्तर पर महिला-केंद्रित आंदोलन अपेक्षाकृत कम दिखाई दिए। यद्यपि कुछ महत्वपूर्ण आंदोलन हुए, किंतु उन्हें सामान्य प्रवृत्ति के बजाय अपवादस्वरूप माना गया है। (बाली, 2013, पे. 788-789)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऑल इंडिया वीमेंस कॉन्फ्रेंस (AIWC) तथा नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वीमेन (NFIW) जैसी महिला संस्थाएँ सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में सक्रिय रहीं, किंतु उनका राजनीतिक हस्तक्षेप अपेक्षाकृत कम हो गया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली इन संस्थाओं ने स्वतंत्रता के बाद अपनी भूमिका को मुख्यतः समाजसेवी गतिविधियों तक सीमित कर लिया। परिणामस्वरूप, राजनीति में महिलाओं की संगठित आवाज़ और सामूहिक दबाव अपेक्षाकृत कमजोर पड़ गया। (मेहरोत्रा, 2001, पे. 263) हालांकि इन संस्थाओं की शाखाएं प्रशाखाएं ग्रामीण व शहरी इलाकों में फैलती गईं। साथ ही इस दौरान महिला संगठनों ने समाज सेवा और कल्याण क्षेत्र में काफी काम किया, देश के विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न सांप्रदायिक झगड़ों से काफी मारकाट दंगे फसाद, लूटमार एवं बालात्कार हुए, महिला संगठनों ने शरणार्थियों के पुनर्वास, उनकी बुनियादी जरूरतों के उपलब्ध कराने और सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने की दिशा में सराहनीय काम किया। (वहीं)

1950 के दशक में विनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान आंदोलन प्रारंभ हुआ, जिसका उद्देश्य भूमिहीनों के लिए स्वैच्छिक भूमि दान और उसका न्यायसंगत वितरण था। इस गांधीवादी आंदोलन में उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश सहित कई राज्यों की महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभाई। यद्यपि आंदोलन को सीमित सफलता मिली, फिर भी इसने सामाजिक न्याय और अहिंसा के आदर्शों को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया। इसी अवधि में महिला संगठनों के प्रयासों से कई महत्वपूर्ण विधिक सुधार भी हुए। हिंदू कोड विधेयकों के माध्यम से हिंदू विवाह और पारिवारिक कानूनों में सुधार किए गए, बहुपत्नी प्रथा पर प्रतिबंध लगाया गया तथा विवाह संबंधी प्रावधानों में परिवर्तन किए गए। इसके अतिरिक्त, दहेज निषेध अधिनियम, 1961 ने दहेज के लेन-देन को दंडनीय अपराध घोषित किया। (मेहरोत्रा, 2001, पे. 55)

स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक दशकों में विकास योजनाओं और औद्योगीकरण के बावजूद समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर महिलाओं, दलितों और श्रमिकों की अनेक समस्याएँ बनी रहीं। बेरोज़गारी, आर्थिक असमानता और सामाजिक विषमताओं ने महिलाओं में असंतोष को बढ़ाया। परिणामस्वरूप, 1960 के दशक के उत्तरार्ध और 1970 के दशक में महिला आंदोलन पुनः सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर सक्रिय हुआ। इस दौर में पुराने महिला संगठन पुनर्जीवित हुए और अनेक नए महिला संगठनों का भी गठन हुआ।

महिला आंदोलन और विविधता: 1970-2000 तक

1970 के दशक में भारतीय महिला आंदोलन ने एक नया स्वरूप ग्रहण किया, जो पूर्ववर्ती चरणों से भिन्न था। इस दौर में महिलाओं ने लोकतांत्रिक अधिकारों, समानता और सामाजिक न्याय के लिए नए संगठनों के माध्यम से संघर्ष किया। साथ ही छात्र, किसान, मजदूर, आदिवासी, जाति-विरोधी और उपभोक्ता आंदोलनों के उभार ने महिला आंदोलन को व्यापक सामाजिक आंदोलनों से जोड़ा। बढ़ती बेरोज़गारी, गरीबी और हाशियाकरण ने 'विकास' की प्रचलित अवधारणा पर पुनर्विचार को प्रेरित किया। इसी अवधि में सामाजिक आंदोलनों की रणनीतियों और



वैचारिक आधारों में भी परिवर्तन आया, जहाँ गांधीवादी अहिंसक प्रतिरोध के साथ-साथ कुछ आंदोलनों पर माओवादी विचारधारा का भी प्रभाव दिखाई दिया। (रॉय, 2011, पे. 412)

1970-80 के दशकों में उभरा समकालीन भारतीय महिला आंदोलन दो प्रमुख कारकों से प्रभावित था। पहला, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, विशेषकर अमेरिका के महिला आंदोलन और द्वितीय लहर के नारीवाद ने भारतीय महिला आंदोलन को वैचारिक प्रेरणा प्रदान की। दूसरा, इसका प्रारंभिक प्रभाव मुख्यतः शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय/उच्चवर्गीय महिलाओं तक सीमित रहा। इसी अवधि में महिलाओं पर केंद्रित सामाजिक एवं सांस्कृतिक साहित्य का भी विकास हुआ, जिसका प्रभाव प्रारंभिक चरण में मुख्यतः शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित था। (बाली, 2013, पे. 790)

पर्यावरणीय व परिस्थितिकी महिला आंदोलन

1970 और 1980 के दशकों में भारतीय महिला आंदोलन ने नए सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय प्रश्नों को अपने एजेंडे में शामिल किया। इस दौर में महिलाओं ने केवल लैंगिक समानता और अधिकारों तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, विस्थापन, महंगाई, शराबबंदी, घरेलू हिंसा तथा भूमि अधिकार जैसे व्यापक जनसरोकारों पर भी सक्रिय भूमिका निभाई। उत्तराखंड के रेणी गाँव से प्रारंभ हुए चिपको आंदोलन में ग्रामीण महिलाओं ने पेड़ों को कटने से बचाने के लिए उनसे चिपककर पर्यावरण संरक्षण का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इस आंदोलन को 'दशीली ग्राम स्वराज संघ' (चमोली) और 'पर्वतीय नवजीवन मंडल' (टेहरी-गढ़वाल) जैसे गांधीवादी संगठनों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इसी प्रकार, टिहरी बाँध और नर्मदा बचाओ आंदोलन में महिलाओं ने विकास परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन, पर्यावरणीय क्षति और आजीविका के संकट का विरोध किया। मेधा पाटकर और चित्ररूपा पालित जैसी कार्यकर्ताओं ने इन आंदोलनों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। (मेहरोत्रा, 2001, पे. 59-60) इसी अवधि में महिलाओं ने शराबबंदी, घरेलू हिंसा और महंगाई के विरुद्ध भी व्यापक जनआंदोलन चलाए। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में महिलाओं ने शराब की दुकानों के विरुद्ध प्रदर्शन किए, देशभर में महिलाओं ने पारिवारिक जीवन को सुरक्षित व खुशहाल करने के लिए ये आंदोलन चलाये। इन राज्यों में कई बार शराबबंदी कानून भी पारित कराए। इस आंदोलन से जाहिर था कि महिलाओं की प्राथमिकताओं में घर-गृहस्थी का सुचारू संचालन शामिल है। घर में हिंसा व झगड़े के स्थान पर वह शांति का माहौल चाहती है। (वहीं, पे 60) जबकि महाराष्ट्र में मृणाल गोरे और अहिल्या रांगणेकर के नेतृत्व में महंगाई-विरोधी अभियान ने महिलाओं को संगठित किया। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र का शहादा आंदोलन, गुजरात का नव निर्माण आंदोलन तथा जयप्रकाश नारायण का संपूर्ण क्रांति आंदोलन भी महिला भागीदारी के महत्वपूर्ण उदाहरण रहे। विशेष रूप से बोधगया भूमि आंदोलन में महिलाओं ने भूमि पर समान अधिकार का प्रश्न उठाया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि महिला आंदोलन का संबंध केवल लैंगिक असमानता से नहीं, बल्कि वर्ग, जाति, पर्यावरण, विकास और सामाजिक न्याय के व्यापक प्रश्नों से भी था। (बाली, 2013; परमार, 2019)

महाराष्ट्र के धुले जिले का शहादा आंदोलन आदिवासियों के अधिकारों और आजीविका से जुड़ा था। सर्वोदय कार्यकर्ताओं द्वारा प्रारंभ किए गए इस आंदोलन में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में यह नशाबंदी



और घरेलू हिंसा के विरोध का भी माध्यम बना तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कुछ पहलुओं को चुनौती दी। (मेहरोत्रा, 2001, पृ. 791) इसी प्रकार, गुजरात का नव निर्माण आंदोलन बढ़ती महंगाई, कालाबाजारी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध उभरा, जिसमें छात्रों, मध्यम वर्ग और महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभाई। महिलाओं की भागीदारी का प्रमुख कारण मूल्य वृद्धि का उनके पारिवारिक जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव था। (परमार, 2019, पृ. 113)

आपातकाल तथा महिला दिवस:

1975 भारतीय महिला आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण वर्ष सिद्ध हुआ। एक ओर देश में आपातकाल की घोषणा के कारण अनेक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को दबा दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए नए संगठन एवं समूह उभरे, जिनमें अनेक महिला कार्यकर्ताओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। दूसरी ओर, संयुक्त राष्ट्र ने 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष तथा 1975-1985 को संयुक्त राष्ट्र महिला दशक घोषित किया, जिससे वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर महिला प्रश्नों को नई पहचान मिली। इसी संदर्भ में भारत सरकार की समिति ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन इन इंडिया (CSWI) ने 1974 में प्रस्तुत और 1975 में व्यापक रूप से चर्चित रिपोर्ट *Towards Equality* प्रकाशित की। इस ऐतिहासिक रिपोर्ट ने महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक स्थिति से संबंधित गहरी असमानताओं को उजागर किया। रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया कि विकास नीतियों में महिलाओं की उत्पादक भूमिका की उपेक्षा की गई, उन्हें मुख्यतः प्रजनन और उपभोक्ता के रूप में देखा गया तथा शिक्षा और विकास के बावजूद वर्गीय एवं लैंगिक असमानताएँ बनी रहीं। (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1975, पेज 240-276)

1972 में इला भट्ट ने अहमदाबाद में सेल्फ एम्प्लॉयड वीमेन'स एसोसिएशन (SEWA) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को संगठित करना, उनके कार्य-परिस्थितियों में सुधार लाना तथा उन्हें आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक सहयोग प्रदान करना था। SEWA ने महिला श्रमिकों के आर्थिक सशक्तीकरण और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। (बाली, 2013, पृ. 791-792) इसी अवधि में नारीवादी अर्थशास्त्रियों देवकी जैन और विना मजूमदार ने महिलाओं के अवैतनिक घरेलू श्रम को आर्थिक मान्यता देने की आवश्यकता पर बल दिया। उनका तर्क था कि घरेलू कार्य, देखभाल और पुनरुत्पादक श्रम को भी 'कार्य' की श्रेणी में शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि इनकी उपेक्षा महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को कमजोर बनाती है। उन्होंने यह भी रेखांकित किया कि महिलाओं का अधिकांश वेतनभोगी कार्य निम्न वेतन वाले देखभाल और सेवा क्षेत्रों तक सीमित रहा। (मेहरोत्रा, 2001, पृ. 271-272)

नए महिला स्वायत्त समूहों का गठन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रारंभिक वर्षों में व्यापक जनधारणा थी कि लोकतांत्रिक सरकार नागरिकों के कल्याण और सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी। किंतु 1960 के दशक के उत्तरार्ध और 1970 के दशक में बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक असंतोष के कारण देश के विभिन्न भागों में जनआंदोलन उभरने



लगे। 1975 में घोषित आपातकाल के दौरान नागरिक स्वतंत्रताओं पर व्यापक प्रतिबंध लगाए गए, जिसके परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, राजनीतिक गतिविधियों और लोकतांत्रिक अधिकारों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। इस अनुभव ने राज्य, लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों के संबंध में नई बहसों को जन्म दिया। आपातकाल के पश्चात् 1970 के दशक के उत्तरार्ध और 1980 के दशक की शुरुआत में दो प्रमुख धाराएँ उभरकर सामने आईं, एक लोकतांत्रिक अधिकारों का आंदोलन और स्वायत्त नारीवादी आंदोलन। **इस दौर में महिलाओं के उत्पीड़न के प्रश्न पर दो भिन्न दृष्टिकोण विकसित हुए।** पहला दृष्टिकोण महिलाओं के संघर्ष को ट्रेड यूनियनों, जनसंगठनों और राजनीतिक दलों के व्यापक लोकतांत्रिक संघर्ष का हिस्सा मानता था। दूसरा दृष्टिकोण स्वायत्त महिला समूहों का था, जो महिलाओं के अनुभवों और लैंगिक उत्पीड़न की विशिष्ट प्रकृति को केंद्र में रखते हुए स्वतंत्र महिला संगठनों की आवश्यकता पर बल देता था। इसके अतिरिक्त, संबद्ध (Affiliated) महिला समूह राजनीतिक दलों के माध्यम से नारीवादी मांगों को आगे बढ़ाने का प्रयास करते थे, जबकि स्वायत्त (Autonomous) समूह संगठनात्मक स्वतंत्रता को महिलाओं के मुद्दों को प्राथमिकता देने की अनिवार्य शर्त मानते थे। (Roy, 2011, p. 413)

सन् 1970 और 2000 के बीच अनेक स्वायत्त महिला समूह एवं संगठनों का गठन हुआ। इनमें कुछ उल्लेखनीय संगठन हैं मुंबई में 'फोरम अगेस्ट रेप' (Forum Against Rape) तथा 'फोरम अगेस्ट ऑपरेशन ऑफ विमेन' (Forum Against Oppression of Women), दिल्ली में 'सहेली', हैदराबाद में 'अस्मिता', बेंगलुरु में 'विमोचना', तमिलनाडु में 'पेन्नुरिमाय इयक्कम' (Pennurimai Iyakkam) तथा उत्तर प्रदेश में 'महिला मंच'। बाद में इन महिला समूहों ने अपनी अलग-अलग पहचान बनाई और ऐसे मंच विकसित किए, जहाँ महिलाएँ बिना भय और पक्षपात के अपनी बात खुलकर रख सकें। स्वायत्त महिला समूहों ने समय-समय पर राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन आयोजित किए। इनमें 1980 और 1985 में मुंबई, 1988 में पटना, 1990 में कालीकट, 1994 में तिरुपति तथा 1997 में राँची में आयोजित सम्मेलन प्रमुख थे। इन सम्मेलनों में हजारों महिलाओं ने भाग लिया और नए-नए मुद्दों को जोड़कर महिला आंदोलन के दायरे का विस्तार किया। (मेहरोत्रा, 2001, पे. 269)

स्वायत्त महिला समूहों ने महिला आंदोलन की चिंताओं को सामने रखते हुए महिलाओं के हितों, लिंग-केंद्रित मुद्दों तथा महिला यौनिकता पर नियंत्रण जैसे प्रश्नों पर विशेष बल दिया। उन्होंने पितृसत्ता के अंतर्गत संस्थागत पुरुष-प्रधानता की आलोचना की तथा महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के विभिन्न रूपों को प्रमुख मुद्दा बनाया। इनमें बलात्कार, दहेज हत्याएँ, कन्या भ्रूण हत्या, महिलाओं का स्वास्थ्य, गर्भनिरोधक साधनों का उपयोग, प्रजनन संबंधी निर्णय का अधिकार, श्रम का लैंगिक विभाजन तथा परिवार सहित विभिन्न संस्थाओं में विद्यमान पितृसत्तात्मक संरचनाएँ प्रमुख थीं। (वहीं, पे 277) इसके विपरीत, अफिलिएटेड महिला समूह गरीबी उन्मूलन, साक्षरता को प्रोत्साहन, रोजगार की उपलब्धता तथा महिलाओं की अन्य बुनियादी आवश्यकताओं को प्राथमिकता देते थे। (राँय, 2011, पे. 413)

स्वायत्त समूह अधिकांशतः **शहरी नारीवादी संगठन** थे, जो राजनीतिक दलों से स्वतंत्र थे। इनमें समता मंच, स्त्री संघर्ष समिति, स्त्री मुक्ति संगठन, फेमिनिस्ट नेटवर्क कलेक्टिव, स्त्री शक्ति संगठन, पुरोगामी महिला संगठन,



विमेन्स सेंटर, काली फॉर विमेन तथा मानुषी जैसे संगठन प्रमुख थे। इनकी मुख्य चिंता महिलाओं के विरुद्ध हिंसा थी, चाहे वह घरेलू हिंसा हो या पुलिस हिरासत में बलात्कार जैसी सार्वजनिक हिंसा। (बसु, 2011, पे. 174)

1990 का दशक: महिला आंदोलन के लिए खड़ी होती चुनौतियां

1990 के दशक तक आते-आते स्पष्ट होने लग गया कि जिसे हम मुख्यधारा का महिला आंदोलन समझ रहे, जो स्वयं ही इसलिए सामने आया कि आधी जनसंख्या यानी महिलाओं को विकास नीति में हाशिये पर छोड़ दिया गया, वही स्वयं भी इसी आलोचना का शिकार हो गया। इस मुख्यधारा के महिला आंदोलन का क्षेत्र बहुत संकीर्ण था, यह केवल शहरों, उच्च व मध्यम वर्ग की पढ़ी-लिखी महिलाओं, हिन्दू उच्च जाति, महिलाओं का ही आंदोलन बन कर रह गया था। मुख्यधारा के महिला विमर्श में स्त्रियों के बीच व्याप्त विभिन्न तरह की भिन्नताओं (जैसे जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्रियता, भाषा, विकलांगता, यौनिकता) के बारे में सोचा ही नहीं गया, जिनके कारण खुद स्त्रियों के बीच बने सत्ता संबंधों पर गौर नहीं किया गया। मथुरा केस, भंवरी देवी केस, सुंदरू घटना तथा मंडल कमीशन, नवउदारवादी नीति का आना, ये कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो 1990 के दशक की, जिससे महिला आंदोलन को आत्म-विश्लेषण के लिए मार्ग प्रशस्त किया। (झा, 2016, पे. 274)

दलित महिलाओं की आवाज़ का उदय

1980 के दशक के मध्य से भारतीय महिला आंदोलन के भीतर दलित नारीवाद एक महत्वपूर्ण वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में उभरकर सामने आया। दलित नारीवादियों ने मुख्यधारा के नारीवादी आंदोलन और दलित राजनीति दोनों की आलोचनात्मक समीक्षा की। उनका तर्क था कि मुख्यधारा का महिला आंदोलन मुख्यतः शहरी, शिक्षित और उच्च जाति की महिलाओं के अनुभवों पर केंद्रित रहा, जिसके कारण दलित महिलाओं की विशिष्ट समस्याओं और अनुभवों को पर्याप्त स्थान नहीं मिल सका। दूसरी ओर, दलित राजनीति ने जातिगत उत्पीड़न को तो प्रमुखता दी, किंतु महिलाओं के विरुद्ध पितृसत्तात्मक भेदभाव को अपेक्षित महत्व नहीं दिया। (Roy, 2011, p. 414) दलित नारीवाद ने जाति और लिंग के बीच अंतर्निहित सत्ता-संबंधों को विश्लेषण का केंद्र बनाया तथा यह प्रतिपादित किया कि दलित महिलाओं के अनुभवों को केवल लिंग या केवल जाति के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसी उद्देश्य से मुंबई सहित विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त दलित महिला संगठनों का गठन हुआ, जिनमें महिला संसद, दलित स्त्री साहित्य मंच, ऑल इंडिया दलित वीमेंस फोरम तथा विकास वंचित दलित महिला परिषद जैसे संगठन उल्लेखनीय हैं। इन संगठनों ने दलित महिलाओं की पहचान, प्रतिनिधित्व और नेतृत्व को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। (Roy, 2011, p. 414)

लैंगिक न्याय का सवाल तथा समान नागरिक संहिता

भारत में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, भरण-पोषण तथा बच्चों के संरक्षण जैसे पारिवारिक विषयों पर विभिन्न धार्मिक समुदायों के अलग-अलग निजी (पर्सनल) कानून लागू होते हैं। यद्यपि संविधान का अनुच्छेद 44 समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) का निर्देश देता है, किंतु इसे राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में रखा गया है, न कि मौलिक अधिकारों में। संविधान निर्माण के समय भी महिलाओं को आर्थिक और नागरिक अधिकार देने



पर व्यापक सहमति थी, लेकिन विवाह और परिवार से जुड़े मामलों में लैंगिक समानता के प्रश्न पर धार्मिक और सांस्कृतिक आधारों पर मतभेद बने रहे। परिणामस्वरूप, निजी कानूनों में सुधार का प्रश्न महिलाओं की समानता के बजाय धार्मिक समुदायों की पहचान और स्वायत्तता से जोड़कर देखा गया। (Menon, 2006, p. 314) महिला संगठनों ने लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल दिया है, किंतु इसके स्वरूप और दायरे पर उनके बीच पूर्ण सहमति नहीं है। उनका प्रमुख आग्रह निजी कानूनों में निहित लैंगिक भेदभाव को समाप्त कर महिलाओं के समान अधिकार सुनिश्चित करना है। इसके विपरीत, समान नागरिक संहिता की राजनीतिक व्याख्याएँ कई बार इसे धार्मिक पहचान के प्रश्न से जोड़ देती हैं। (मेहरोत्रा, 2001, पृ. 278)

प्रतिनिधित्व का सवाल तथा महिला आंदोलन

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी का प्रश्न भारतीय महिला आंदोलन का एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। इसकी पृष्ठभूमि स्वतंत्रता आंदोलन से ही तैयार होने लगी थी, जब महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के साथ नागरिकता, मताधिकार और समान राजनीतिक अधिकारों की मांग उठाई। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद महिलाओं को सार्वभौमिक मताधिकार प्राप्त हो गया, फिर भी सामाजिक और संरचनात्मक बाधाओं के कारण उनकी राजनीतिक भागीदारी सीमित बनी रही। (राँय एवं शर्मा, 2001, पृ. 356–368)

इसी दिशा में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों (1992–93) के माध्यम से पंचायती राज एवं शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए न्यूनतम 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया, जिसे बाद में अनेक राज्यों ने बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया। इन संशोधनों ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी का विस्तार किया, यद्यपि व्यवहार में पितृसत्तात्मक सोच और 'सरपंच पति' जैसी प्रवृत्तियाँ उनकी प्रभावी भागीदारी में बाधा बनी रहीं। इसके बाद महिला संगठनों ने संसद और विधानसभाओं में भी महिलाओं के लिए आरक्षण की मांग को और अधिक संगठित रूप से उठाया। (मेहरोत्रा, 2001, पृ. 279) दलित महिलाओं के लिए यह स्थिति और अधिक जटिल रही, क्योंकि उन्हें जाति, वर्ग और लिंग तीनों स्तरों पर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। (एजाज़, 2001, पृ. 345–346) स्थानीय निकायों में आरक्षण की सफलता से प्रेरित होकर महिला संगठनों ने संसद और विधानसभाओं में भी 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग को संगठित रूप से उठाया। किंतु 1996 और 1998 में इस संबंध में व्यापक राजनीतिक सहमति नहीं बन सकी तथा अधिकांश राजनीतिक दलों ने महिलाओं को सीमित संख्या में ही चुनावी टिकट दिए। इस बहस ने स्पष्ट किया कि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के साथ-साथ उनके भीतर विद्यमान जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्रीय विविधताओं को भी नीति-निर्माण में समुचित स्थान देना आवश्यक है। (राँय एवं शर्मा, 2001, पृ. 366–367)

विशिष्ट पहचानों की बहुलता तथा महिला आंदोलन



1990 के दशक के बाद भारतीय महिला आंदोलन में पहचान-आधारित (identity-based) विमर्शों का विस्तार हुआ। जाति, यौनिकता, वैवाहिक स्थिति, विकलांगता तथा अन्य सामाजिक पहचानों ने महिला आंदोलन को अधिक समावेशी बनाया, साथ ही नेतृत्व, प्रतिनिधित्व और सत्ता-संबंधों पर नए प्रश्न भी खड़े किए। इन बहसों ने यह स्पष्ट किया कि सभी महिलाओं के अनुभव समान नहीं हैं तथा महिला आंदोलन के भीतर भी विविधताओं को स्वीकार करना आवश्यक है। (गोस्वामी, 2017, पृ. 103-104) इसी अवधि में समलैंगिक महिलाओं, एकल महिलाओं, एकल माताओं, तलाकशुदा और परित्यक्ता महिलाओं के अधिकारों को भी महिला आंदोलन के एजेंडे में स्थान मिला। (मेहरोत्रा, 2001, पृ. 280-281) साथ ही विकलांग महिलाओं के अनुभवों ने यह रेखांकित किया कि लिंग के साथ विकलांगता, जाति और वर्ग जैसे कारक भी बहुस्तरीय भेदभाव को जन्म देते हैं। अनिता घई के अनुसार, विकलांग महिलाएँ सामाजिक अदृश्यता, पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह तथा विवाह, मातृत्व और यौनिकता से जुड़े रूढ़िगत दृष्टिकोणों के कारण बहुआयामी वंचना का सामना करती हैं। (घई, पृ. 54-55) इन नई पहचानों के उभार ने प्रजनन अधिकार, गर्भपात, विकलांगता अधिकार तथा लैंगिक न्याय जैसे प्रश्नों को और अधिक जटिल बनाया तथा महिला आंदोलन को अंतर्विभाजक (intersectional) दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया। (गोस्वामी, 2017, पृ. 103)

महिला अध्ययन कार्यक्रम तथा महिला सशक्तीकरण

महिला अध्ययन (Women's Studies) एक अकादमिक विषय के रूप में 1975 के आसपास विकसित हुआ, जब भारत सरकार की *Committee on the Status of Women in India* द्वारा *Towards Equality* नामक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इस रिपोर्ट ने महिलाओं से जुड़ी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं को उजागर किया। रिपोर्ट से स्पष्ट हुआ कि शिक्षा सहित विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों से पीछे हैं तथा महिलाओं के विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है। इसके साथ यह प्रश्न भी उठाया गया कि समानता के संवैधानिक सिद्धांत का सामाजिक जीवन पर अपेक्षित प्रभाव क्यों नहीं पड़ सका।

रिपोर्ट ने यह भी प्रश्न उठाया कि शैक्षणिक संस्थान, कानूनी व्यवस्था, मीडिया, राजनीतिक दल और ट्रेड यूनियन महिलाओं के अधिकारों और मुद्दों को पर्याप्त महत्व देने में क्यों असफल रहे। इसके पीछे एक कारण यह बताया गया कि अधिकांश नीतियाँ और संस्थाएँ शहरी मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से संचालित होती रहीं, जिसके कारण विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों की महिलाओं के अनुभवों और समस्याओं की उपेक्षा हुई। इसी संदर्भ में महिलाओं से संबंधित अध्ययन को एक स्वतंत्र अकादमिक कार्यक्रम के रूप में विकसित करने की आवश्यकता महसूस हुई, ताकि महिला प्रश्नों, लैंगिक असमानताओं और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं का गंभीर अध्ययन किया जा सके।

महिला अध्ययन कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य नीतियों में परिवर्तन के लिए आवश्यक ज्ञान और शोध को विकसित करना, सामाजिक विज्ञान में प्रयुक्त सिद्धांतों एवं अवधारणाओं का जेंडर दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन करना, महिला प्रश्नों को केंद्र में लाना तथा महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है। इसके अतिरिक्त, यह कार्यक्रम सामाजिक विज्ञान में लैंगिक असमानताओं को समझने के लिए



आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है और भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर व्यापक विमर्श को बढ़ावा देता है। इस प्रकार महिला अध्ययन शोध, सूचना संग्रह और नीति निर्माण के माध्यम से समाज के हाशिये पर स्थित समूहों की समस्याओं को समझने तथा उन्हें विकास प्रक्रिया में शामिल करने का प्रयास करता है। हालांकि, कई संस्थानों में मौजूद पितृसत्तात्मक सोच और पूर्वाग्रह महिला अध्ययन के विकास में बाधा बनते हैं। इसके कारण महिला अध्ययन से जुड़े शिक्षकों और शोधकर्ताओं को कई बार उपेक्षा, आलोचना और नकारात्मक दृष्टिकोण का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों के बावजूद महिला अध्ययन का विकास महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक असमानताओं को समझने के लिए महत्वपूर्ण रहा है। इससे महिला अध्ययन को संस्थागत रूप देने और जेंडर आधारित समस्याओं पर गंभीर अकादमिक विमर्श विकसित करने में सहायता मिली।

निष्कर्ष

भारतीय महिला आंदोलन एक निरंतर विकसित होने वाली सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया रही है, जिसकी शुरुआत सामाजिक सुधार आंदोलनों से होकर आधुनिक नारीवादी विमर्श तक पहुँचती है। इस आंदोलन ने शिक्षा, मताधिकार, राजनीतिक भागीदारी, हिंसा, श्रम अधिकार, निजी कानूनों और समानता जैसे अनेक प्रश्नों को केंद्र में लाया। समय के साथ यह स्पष्ट हुआ कि महिलाओं की समस्याएँ केवल लैंगिक असमानता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और पहचान की संरचनाओं से भी जुड़ी हुई हैं। महिला आंदोलन ने राज्य की भूमिका पर भी प्रश्न उठाए कि राज्य एक ओर महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाता है, वहीं दूसरी ओर उसकी संस्थाओं और नीतियों में पितृसत्तात्मक तथा वर्गीय पूर्वाग्रह दिखाई देते हैं। दलित नारीवाद, विकलांग महिलाओं के प्रश्न और यौनिक विविधताओं के विमर्श ने महिला आंदोलन को अधिक समावेशी और आत्म-आलोचनात्मक बनाया। भूमण्डलीकरण और बाजार ने महिलाओं के लिए रोजगार के नए अवसर पैदा किए, लेकिन इसके साथ असुरक्षित रोजगार, कम मजदूरी और श्रम के नए लैंगिक विभाजन भी सामने आए। इसलिए महिला सशक्तीकरण केवल रोजगार उपलब्ध कराने से संभव नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, पितृसत्तात्मक सोच और संस्थागत असमानताओं में परिवर्तन आवश्यक है। अतः भारतीय महिला आंदोलन की चुनौती आज भी यही है कि वह सभी वर्गों, जातियों और पहचानों की महिलाओं को साथ लेकर समानता, न्याय और गरिमा पर आधारित समाज का निर्माण कर सके।

संदर्भ सूची:

- [1] आर्य, सा., मेनन, नि., & लोकनीता, जि. (सं.). (2001). *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [2] एजाज़, त. (2001). सार्वजनिक नीति पर महिलाओं का दृष्टिकोण: महिलाओं के लिए आरक्षण. इन सा. आर्य, नि. मेनन, & जि. लोकनीता (सं.), *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।



- [3] गोस्वामी, न. (2017). नारीवाद की भारतीयता: आयाम, अस्मिता और अंतरंगता. *प्रतिमान: समय, समाज और संस्कृति*, अंक 9, जनवरी-जून.
- [4] घई, अ. (2002). डिसेबल्ड विमेन: एन एक्सक्लूडेड एजेंडा ऑफ इंडियन फेमिनिज्म. *हाइपेशिया*, 17(3), 49–66. जेस्टोर.
- [5] जॉन, मे. ई. (2008). *विमेन्स स्टडीज इन इंडिया: ए रीडर*. पेंगुइन बुक्स.
- [6] झा, वि. कु. (2016). भारतीय नारीवाद और भिन्नता का प्रश्न: वर्ग, जाति और जेंडर का अंतरसंबंध. *प्रतिमान: समय, समाज और संस्कृति*, (7), 274.
- [7] परमार, शु. (2019). *नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार*. ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [8] बाली, पु. (2013). महिला आंदोलन: प्रश्न और परिप्रेक्ष्य. इन एम. पी. सिंह & हि. रॉय (सं.), *भारतीय राजनीतिक प्रणाली: संरचना, नीति और विकास*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [9] मेनन, नि. (2001). समान नागरिक संहिता: नारीवाद में मौजूद बहस. इन सा. आर्य, नि. मेनन, एंड जि. लोकनीता (सं.), *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [10] मेनन, नि. (2006). *जेंडर एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया*. ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [11] मेहरोत्रा, दी. प्र. (2001). समकालीन भारत में महिला आन्दोलन. इन सा. आर्य, नि. मेनन, & जि. लोकनीता (सं.), *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [12] मेहरोत्रा, दी. प्र. (2001). *भारतीय महिला आन्दोलन: कल, आज और कल*. सम्पूर्णा ट्रस्ट।
- [13] राय, श. म., & शर्मा, कु. (2001). भारतीय संसद का लोकतंत्रीकरण: महिलाओं के लिए आरक्षण विवाद. In सा. आर्य, नि. मेनन, & जि. लोकनीता (सं.), *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [14] रॉय, अनु. (2011). द विमेंस मूवमेंट. इन नि. जयल & प्र. भ. मेहता (सं.), *द ऑक्सफॉर्ड कंपैनिन टु पॉलिटिक्स इन इंडिया*. ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [15] सिंह, ल. (2001). राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाएं: भूमिका का सवाल. इन सा. आर्य, नि. मेनन, & जि. लोकनीता (सं.), *नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- [16] सिंह, एम. पी., & रॉय, हि. (सं.). (2013). *भारतीय राजनीतिक प्रणाली: संरचना, नीति और विकास*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।



-
- [17] पाठक, सु. (बिना वर्ष). स्त्री अध्ययन की वर्तमान भारतीय परिदृश्य. ऑनलाइन उपलब्ध।
<https://share.google/UN1kInoWtRCGTUYfU>
- [18] सौजन्या, टी. अंडरस्टैंडिंग दलित फेमिनिज्म. ऑनलाइन उपलब्ध।
<https://share.google/CCbuzAXApt1TiwySG>